गोडसे नहीं, गांधी के मूल्य चाहिए

• संदर्भ- विविधता तथा बहुलता वाले भारत में जनमानस और उसके आदर्श

रणदीप सिंह सुरजेवाला
कांग्रेस मीडिया विभाग के चेयरमैन

एक बार नेहरू मंच की सीढ़ियों पर लड़खड़ा गए, तो कवि रामधारी सिंह दिनकर ने उन्हें सहारा दिया। नेहरूजी बोले, अच्छा हुआ आपने संभाल लिया। तब दिनकरजी ने जवाब दिया, जब सियासत लड़खड़ाती है, तो साहित्य ही उसे संभालता है।

असहनशीलता की इस भयंकर गर्मी में भी सरकार व उसके कर्णधारों ने अहंकार का कोट पहन रखा है। इतिहास गवाह है कि इस देश की समरसता को किसी चमकीले बूट से कुचला नहीं जा सकता।

नफरत के इस माहौल में उम्मीद की किरण आम जनमानस है। उसने हिंसा, नफरत और बंटवारे की राजनीति को नकारा है। खुद के मन की बात छोड़, देश के मन की बात समझें।

आजादी के अड़सठ वर्षों के बाद, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के जीवन-मूल्य बदलने की साजिश हो रही है। हम क्या खाएं, क्या पहनें, क्या बोलें, क्या लिखें, कैसे सोचें- यह सब केंद्रीय सरकार में बैठी सांप्रदायिक और देश-विरोधी ताकतें तय करना चाहती हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के हत्यारे को देशभक्त बताया जाता है। आत्महत्या करने वाले किसानों को कायर कहा जाता है। निहित स्वार्थों को पूरा करने पर तुली ये ताकतें अपने थोपे गए विचारों के जरिये सवा सौ करोड़ देशवासियों की जीवन पद्धति बदलने की फिराक में हैं। यही असहनशीलता है, असहिष्णुता है। कहना न होगा कि देश को आजादी मिलने के बाद यह अब तक का सबसे खतरनाक दौर है, क्योंकि इसमें हमारे आधारभूत मूल्य दांव पर लगे हैं।

गुस्सा और हिंसा सरकार की पहचान बन गए हैं। मजे की बात है कि लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गई यह सरकार एक पैर की कुर्सी पर बैठी है और आवाज भी एक व्यक्ति की ही सुनाई देती है, जबकि भारत का स्वभाव इस सरकार के स्वभाव से बिल्कुल अलग है। यहां सबको बोलने का अधिकार है। सबको अपना धर्म मानने का अधिकार है। सबकी अपनी भाषा है। सबका अपना पहनावा है। इतना ही नहीं, इस देश का झंडा भी तीन रंग का है। मतलब साफ है। भारत सहनशील, सहिष्णु है और मोदी सरकार असहनशील, असहिष्णु। असहनशीलता की महामारी हर स्तर पर है- प्रजातांत्रिक, शैक्षणिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि इसकी अगुआई सरकार में बैठे मंत्री, मुख्यमंत्री और सरकार से जुड़े संगठनों के मुखिया कर रहे हैं। देश जानना चाहता है कि कौन और कैसे लोग हैं ये?

दुख की बात यह है कि कभी पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के राष्ट्रवाद को धर्म से जोड़ा जाता है, तो कभी नोबेल पुरस्कार से सम्मानित समाजसेवी मदर टेरेसा की जनसेवा को धर्म परिवर्तन की कोशिश बताया जाता है। कभी दलितों और पिछड़ों के आरक्षण को खत्म करने की बात कही जाती है, तो कभी इंसानों को कुत्ता बताने से भी परहेज नहीं किया जाता। कभी देश को रामजादे बनाम हरामजादे में बांटकर बहस चलाई जाती है, तो कभी देश छोड़कर पाकिस्तान चले जाने की दुहाई दी जाती है। कभी खाने के तरीकों के आधार पर देश की नागरिकता तय की जाती है, तो कभी कपड़े पहनने और बोली के आधार पर। कभी लेखकों और साहित्यकारों की आवाज को दबाया जाता है, तो कभी पुरस्कार वापस करने जैसी बड़ी घटना को साजिश बताया जाता है। कहा जाता है कि यह तो बनावटी विरोध है। कभी फिल्म एवं टीवी संस्थान के छात्रों की आवाज को दबाया जाता है, तो कभी दिल्ली की जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी जैसी बेहतरीन और प्रतिष्ठित संस्था को देश-विरोधी ताकतों का अड्डा बताया जाता है। कभी अंधविश्वास के खिलाफ लड़ने वाले लेखकों और आंदोलनकारियों को मौत के घाट उतारकर उनकी विचारधारा की हत्या की कोशिश होती है, तो कभी बगैर कारण जाने दादरी, उत्तरप्रदेश में अख़लाक को मौत की नींद सुला दिया जाता है। कभी शाहरुख खान जैसे फिल्म कलाकारों की उग्रवादी हाफिज सईद से तुलना की जाती है, तो कभी आमिर खान को परिवार सहित देश छोड़ देने की सलाह दी जाती है। दोष इतना ही है कि उन्होंने अपने विचार खुलकर जाहिर किए।

और जब देश के उपराष्ट्रपति, हामिद अंसारी बुजुर्ग की तरह राय देते हैं कि देश में विविधता और असहमति के लिए असहिष्णुता का रुझान दिखाई दे रहा है तो उन पर भी यही लोग और संगठन धर्म के आधार पर हमला बोलते हैं। सवाल यह उठता है कि क्या यह देश ऐसे चल पाएगा? विचारकों, लेखकों, चिंतकों और वैज्ञानिकों की पुरस्कार

वापसी मुहिम को बनावटी विरोध का दर्जा देने वाले सरकार के शीर्ष मंत्रियों को इतिहास के दर्पण में झांककर एक वाकया याद करने की आवश्यकता है, जो साहित्य की भूमिका को रेखांकित करता है।

दिल्ली स्थित लाल किले पर एक कवि सम्मेलन में शिरकत करने आए तब के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू मंच की सीढ़ियों पर लड़खड़ा गए, तो कवि रामधारी सिंह दिनकर ने उन्हें तुरंत सहारा दिया। नेहरूजी बोले, अच्छा हुआ आपने संभाल लिया। तब दिनकरजी बोले, जब सियासत लड़खड़ाती है, तो साहित्य ही उसे संभालता है। आज मोदी सरकार साहित्यकार हों या लेखक, छात्र हों या आम लोग, उनकी बात सुनने, उनका सहारा लेने की बजाय उनकी आवाज को ही अपने वजन से दबा देना चाहती है। वैसे भी कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, लेकिन लगता है कि मौजूदा सरकार इस दर्पण में अपना चेहरा नहीं देखना चाहती।

असहनशीलता की इस भयंकर गर्मी में भी सरकार व उसके कर्णधारों ने अहंकार का कोट पहन रखा है। इतिहास गवाह है कि इस देश के साहित्य, समरसता और सहनशीलता को किसी चमकीले बूट से कुचला नहीं जा सकता। अगर कोशिश करेंगे भी, तो देश के लोग बहुत बुद्धिमान हैं। जैसा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी हाल तक कहते थे कि बिहार का मिजाज पूरे देश का मिजाज है। अगर आप असहनशील रहेंगे, असहिष्णुता दिखाएंगे तो वही होगा, जो बिहार ने किया- जोर का झटका, धीरे से लगेगा। तय मानिए कि ऐसे ही झटके आपको हर कदम पर लगेंगे, क्योंकि जैसा वातावरण देश में बनाया गया है, देश का चरित्र ठीक उसके विपरीत है।

नफरत और बंटवारे के इस पूरे माहौल में उम्मीद की किरण इस देश का आम जनमानस है। उसने सब साजिशों के बावजूद हिंसा, नफरत और बंटवारे की राजनीति को नकारा है। आइए, खुद के मन की बात छोड़, देश के मन की बात समझें। सद्बुद्धि का आश्रय लें और नफरत को प्यार से बदलें, हिंसा को अहिंसा से, सांप्रदायिकता को भारतीयता से और असहनशीलता को समरसता से। हमें सदैव याद रखना चाहिए कि भारत की पहचान सदैव भगवान राम के आदर्शों से रही है, रावण के अहंकार से नहीं। भारत की पहचान धर्म का पालन करने वाले युधिष्ठिर से है, अहंकार की माला जपने वाले दुर्योधन से नहीं। भारत की पहचान मानवता का पाठ पढ़ाने वाले गौतम बुद्ध से है, धन की चाहत रखने वाले धनानंद से नहीं। भारत की पहचान अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी से है, असहनशील, असहिष्णु नाथूराम गोडसे से नहीं। इसलिए 21 वीं सदी के भारत का संदेश 'मुंह में गांधी और मन में फूट नहीं, बल्कि 'सहनशीलता की आंधी और भाईचारा अटूट' ही है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं।)